Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 6
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि

लक्ष्मण
शोधार्थी, सोबन सिंह जीना परिसर, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

Article Info
Publication Issue :
November-December-2023
Volume 6, Issue 6
Page Number : 191-202
Article History
Received : 02 Dec 2023
Published : 21 Dec 2023

शोधसारांश– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद के महत्व को पहचान कर उन पर अपनी बेदह प्रासंगिक और महत्वपूर्ण टिप्पणी देते है। वे लिखते हैं–''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्पोषित कृषकों की आवाज थे; पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे; गरीबों और बेकसों के महत्व के प्रचारक थे।

मुख्य शब्द– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, इतिहास, कथासम्राट, पददलित, अपमानित, निष्पोषित, कृषक, महिमा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि बहुत व्यापक थी। व्यापक इस अर्थ में कि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिंदी साहित्य की भूमिका में वे लिखते हैं–''ऐसा प्रयत्न किया है कि हिंदी साहित्य को संपूर्ण भारतीय साहित्य से विच्छिन्न करके न देखा जाए। मूल पुस्तक में बार–बार संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य की चर्चा आई है, इसीलिए कई लंबे परिशिष्ट जोड़कर संक्षेप में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्यों का परिचय करा देने की चेष्टा की गई है।''[1] और प्रो0 मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं–''आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा निर्मित आलोचना की परंपरा और साहित्य के इतिहास के व्यवस्थित ढांचे का विकास वही व्यक्ति कर सकता है जो अपने समय के समाज और साहित्य की प्रगति की आवश्यकताओं के अनुरूप नई सामाजिक चेतना, कलात्मक संवेदनशीलता, स्वतंत्र चिंतन और इतिहास के विकास की दिशा की पहचान वस्तुवादी दृष्टि के आधार पर कर सके और उससे मूल्यांकन की नई पद्धति का विकास कर सके। जो इतिहासकार अपनी नई मूल्य व्यवस्था और मूल्यांकन की पद्धति के कुशल व्यवहार द्वारा हिंदी साहित्य की परंपराओं का नया मूल्यांकन कर सकता है और हिंदी साहित्य के भावी विकास की सही दिशा का संकेत दे सकता है, वही सार्थक नए इतिहासबोध का काम कर सकता है।''[2] निःसंदेह यह कार्य बड़ी ईमानदारी से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया। एक प्रकार से आचार्य शुक्ल से भिन्न और स्पष्ट सौंदर्य बोध आचार्य द्विवेदी जी का

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

था। प्रो0 मैनेजर पाण्डेय आगे लिखते हैं–''साहित्य के इतिहास लेखन में कुछ तिथियों और तथ्यों को घट बढ़ा देना या कमोबेश 'कवि कीर्तन' करना नया इतिहास लिखना नहीं है। इतिहासलेखन का नयापन 'विस्मृत परंपराओं की खोज' करने, परंपराओं को पुनर्व्यवस्थित करने और उनका नया मूल्यांकन करने में प्रकट होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह महत्वपूर्ण काम किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास लेखन का प्रयास परंपरा के पुनर्मूल्यांकन और नए विकास की संभावनाओं की ओर संकेत करने के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद हिंदी साहित्य के इतिहासलेखन की दिशा में एक सार्थक और नया प्रयास माना जाता है।''[3] प्रभाव उत्पादक एवं प्रेरणा संचारक तत्व की सहायता से आचार्य द्विवेदी जी ने शुक्ल जी द्वारा निर्मित 'वीरगाथाकाल' नाम पर अपनी असहमति प्रकट करते हैं और आदिकाल नाम को सार्थक मानते है वे राहुल सांकृत्यायन द्वारा सिद्धसामांत काल को भी उचित ठहराते है।[4] इस प्रकार से आचार्य द्विवेदी ने 'आदिकाल' नाम पर सहमति देते हुए उसे सार्थक सिद्ध किया। चूंकि वीरगाथा काल में शुक्ल जी द्वारा गिनाई गई 12 पुस्तकों में अधिकांश जाली नोटिस भाग व बहुत बाद की ठहरती है आचार्य द्विवेदी लिखते है–''इधर हाल की खोजों से पता चलता हे कि जिन बाहर पुस्तकों के आधार पर शुक्लजी ने इस काल की प्रवृत्तियों का विवेचन किया था, उनमें भी कई पीछे की रचनाएं है और कई नोटिस मात्र है और कई के संबंध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनका मूलरूप क्या था।''[5] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि बहुत व्यापक है। वे सब कुछ को समेटते हुए आगे बढ़ते है वे लिखते है–''जिस साहित्य में केवल धार्मिक उपदेश हो, उससे वह साहित्य निश्चित रूप से भिन्न है जिसमें धर्म भावना प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही हो और साथ ही जो हमारी सामान्य मनुष्यता को आंदोलित, मथित और प्रभावित कर रही हो। इस दृष्टि से अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलतः जैन–धर्म, भावना से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं, निःसंदेह उत्तम काव्य है और 'विजयपाल रासो' और 'हम्मीर रासो' की भांति ही साहित्यिक इतिहास के लिए स्वीकार्य हो सकती है। यह बात बौद्ध सिद्धों की कुछ रचनाओं के बारे में भी कही जा सकती है।''[6]

'प्रेरक शक्ति' एवं 'सामान्य मनुष्यता को आंदोलित' करने वाली शक्ति से भरी काव्य रचना (चाहे वह धार्मिक ही क्यों न हो) साहित्य की कोटि में आ सकती है। आगे आचार्य द्विवेदी लिखते है–''इधर जैन–अपभ्रंश चरित्र–काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय के मुहर लगाने, भाग से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है। स्वयंभू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि

केवल जैन होने के कारण ही काव्य क्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भी साहित्य क्षेत्र में अविवेच्य हो जायेगा और जायसी का 'पद्मावत' भी साहित्य सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा।''[7] आगे एक प्रकार से जोर देकर आचार्य द्विवेदी कहते हैं–''केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर यदि हम ग्रंथों की साहित्य–सीमा से बाहर निकालने लगेगे तो हमें आदिकाल से भी हाथ धोना पड़ेगा, तो तुलसी–रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा। मध्ययुग के साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्म साधना ही रही है।''[8] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी में यह व्यापक दृष्टि है कि वे किसी तथ्य, विचारधारा, सिद्धांत को समझने के लिए उसके इतिहास, पूर्व परम्परा, उसकी प्राचीन संस्कृति की बारीकी से जांच पड़ताल एक प्रकार से गहरी रिसर्च करते है तब जाकर अमुक तथ्य, सिद्धांत या विचारधारा, साहित्य आदि–इत्यादि पर अपनी राय देते है। उदाहरण स्वरूप वे अपभ्रंश साहित्य को समझने के लिए संस्कृत साहित्य; सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य को गहराई से जानने के लिए पूर्ववर्ती अपभ्रंश तक जाते हैं और व्यक्ति साहित्य को समझने के लिए अखिल भारतीय आंदोलन व उसके प्राचीन साहित्य को टटोलते है तथा निर्गुण साहित्य को विश्लेषित करने के लिए सिद्ध, नाथ, जैन, साहित्य का गहरा मूल्यांकन करते हैं। यह आचार्य द्विवेदी की अपनी इतिहास दृष्टि है।

आचार्य द्विवेदी ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा दी गई भक्ति साहित्य के जन्म व विकास की व्युत्पत्तियों एवं उसके प्रसार पर गहरी असहमति प्रकट की है। वे लिखते हैं–''दुर्भाग्यवश हिंदी साहित्य के अध्ययन और लोक चक्षु, गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है वे भी हिंदी साहित्य का संबंध हिंदू जाति के साथ ही अधिक बतलाते है और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते है : एक यह है कि हिंदी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की संपत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान–पतन के साथ अंगांगि–भाव से संबध है और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो, तो भी वह एक निरंतर पतनशील जाति की चिंताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आपमें कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ।''[9]

सर जार्ज ग्रियर्सन भक्ति साहित्य के बारे में लिखते हैं–''कोई भी मनुष्य जिसे पद्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का मौका मिला है उस भारी व्यवधान (Gap) को लक्ष्य किए बिना नहीं रह सकता जो (पुरानी और नई) धार्मिक भावनाओं में विद्यमान है। हम अपने की ऐसी धार्मिक आंदोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आंदोलनों से कही अधिक विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है, यहां तक कि वह बौद्ध धर्म के आंदोलन से भी अधिक विशाल है क्योकि इसका प्रभाव आज भी वर्तमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेश का विशेषज्ञ हो गया था। यहां से हम साधना और प्रेमोल्लास के देश में आते है और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते है जो काशी के दिग्गज पंड़ितों की जाति के थॉसम ए0 केंपिन और सेंट थेरिसासे है।''[10] और आगे डॉक्टर ग्रियर्सन लिखते हैं–''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिंदू यह नहीं जानता कि यह बात कहां से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चित नहीं कर सकता।''[11]

भारतीय चिंता धारा की स्वाभाविक विकास परम्परा की खोज करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ग्रियर्सन के इस मत का मजबूती के साथ खण्डन करते है। इस बिजली की चमक को लम्बे समय से (सैकड़ों वर्ष से) एकत्र हो रहे 'मेघखण्ड' से जोड़ते हुए; भक्ति को शुद्ध भारतीय रूप में प्रतिपादित करते हैं आचार्य द्विवेदी लिखते है–''असल बात यह है कि जिस बात को ग्रियर्सन ने 'अचानक बिजली क चमक क समान फैल जाना'' लिखा है वह ऐसा नहीं है। उसके लिए सैकड़ों वर्ष से मेघखण्ड एकत्र हो रहे थे। फिर भी ऊपर–ऊपर से देखने पर लगता है कि उसका प्रादुर्भाव एकाएक हो गया।''[12] आचार्य द्विवेदी जी तो एक जगह लिखते है–''ईसाई धर्म में जो भक्तिवाद है, वही महायानियों की देन सिद्ध होने को चला है, क्यांकि ऐसे बौद्धों का अस्तित्व एशिया की पश्चिमी सीमा में सिद्ध हो चुका है और कुछ पंडित तो इस प्रकार के प्रमाण पाने का दावा भी करने लगे है कि स्वयं ईसा मसीह भारत के उत्तरी प्रदेशों में आए थे और बौद्ध धर्म में दीक्षित भी हुए थे।''[13]

डॉ0 ग्रियर्सन के बाद आचार्य द्विवेदी जी ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा भक्ति साहित्य के मूल्यांकन का खण्डन करते है। प्रो0 मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं–''आचार्य द्विवेदी का शुक्ल जी से दूसरा मुख्य मतभेद भक्तिकाल के प्रसंग में प्रकट हुआ है। भक्तिकाल ही द्विवेदी जी के इतिहास और आलोचना का मुख्य विषय है। मतभेद का मुख्य मुद्दा भक्ति आंदोलन के उदय के कारण से जुड़ा हुआ है।''[14] एक तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ''जिस समय 'हिंदी साहित्य की भूमिका' लेकर आए वह इस

देश में व्यापक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलनों का काल है। यह भारत के राष्ट्रीय नवजगारण के विकास का काल है और इस नवजागरण की मुख्य विशेषताएं है परंपरा का नया मूल्यांकन, रूढ़िवाद का विरोध, स्वतंत्र चिंतन और सृजन का प्रबल भाव।''[15]

दूसरी तरफ अहिंदी प्रदेशों को हतदर्प, पराजित, निराशा से भरे साहित्य से लोगों को बचाने का कार्य यह ऐतिहासिक और नैतिक दायित्व से भरा कार्य था; जिस आचार्य द्विवेदी ने अपनी मौलिक इतिहास–दृष्टि के द्वारा 'भक्ति आंदोलन के उदय का' सार्थक और अविस्मरणीय मूल्यांकन किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्ति–आंदोलन के उदय के बारे में लिखते है–''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देवमूतियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन –समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?''[16]

आचार्य द्विवेदी ने इस व्याख्या के प्रति अपनी गहरी असहमति व्यक्त की है। वे लिखते है–''यह बात अत्यंत उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहते थे, तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थन की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा का उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।''[17]

वे भक्ति को वेद, पुराण, उपनिषद, बौद्ध, जैन से होते हुए विद्यापति व दक्षिण भारत की भक्ति परंपरा के साथ अखिल भारतीय स्वरूप में एकत्रित हुए 'सैकड़ों वर्ष के मेघखण्ड' के रूप में देखते है। पर आचार्य वर्तमान राजनीतिक स्थिति को एकदम से नजर अन्दाज भी नहीं करते हैं। वे लिखते हैं–''ऐसा करके मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।''[18]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने शिक्षित जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन में सहयोग–साहित्य को महत्व देते है। जो इस साहित्य जनचित्तवृत्ति को उदासीन रखता है वह शुक्ल जी के आलोचना कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। भारतवर्ष में आस्तिक व नास्तिक की इतिहास–परंपरा काफी प्राचीन रही है। एक तरफ वेद, पुराण, उपनिषद, षड्दर्शन या हिंदू दर्शन रहे हैं तो दूसरी आर चार्वाक, आजीवक, बौद्ध जैन, जैसी नास्तिक विचारधारा भी। सिद्ध, नाथ जो बौद्ध दर्शन से निकली परंपरा रही है वह एकदम से समाप्त नहीं होती है। जैसा कि कभी भी कोई परंपरा, संस्कृति एकदम से विलुप्त नहीं हुआ करती है। इसी सिद्ध, नाथ, आजीवक, चार्वाक की परंपरा की प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप संतधारा काव्य के कवियों में लक्षित होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं–''इस शाखा की रचनाएं साहित्यिक नहीं है–फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग है।''[19] और आचार्य शुक्ल आगे लिखते हैं–''इस पंथ का प्रभाव शिष्ट आर शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नयी बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।''[20]

इस प्रकार आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि मे शिक्षित जनता की चित्तवृत्ति के विकास, उसके परिवर्तन की सकारात्मक दिशा ही साहित्य के विकास का और समाज के विकास का आंतक है।

दूसरी तरफ संस्कृतवाणी का विकास उनकी आलोचना कसौटी की परिचायक बनती है। प्रो0 मैनजर पाण्डेय लिखते हैं कि–''आचार्य शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली की भूमिका में संत कवियों को लोक विरोधी तक कह डाला है।''[21]

इस प्रकार उपर्युक्त व्याख्याओं का ठीक–ठीक मूल्यांकन करना जरूरी था। जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी भी मत, विचार, दर्शन–सिद्धांत पर अपना विश्लेषण–विवेचन रखते समय आमुक विषय की केवल समसामयिक घटनाओं यथा–राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक आदि पर ही अपनी दृष्टि नहीं रखते बल्कि इस समसामयिकता के साथ–साथ वह अमुक बात, विचार की पूर्ववर्ती परंपरा, उसके अखिल सांस्कृतिक रूप का भी विश्लेषण करते हैं। यह उनकी अपनी मौलिक इतिहास दृष्टि है। ठीक इसी प्रकार आचार्य द्विवेदी वे संत–साहित्य का विवेचन करने में सिद्ध, नाथ व जैन परंपरा की गहरी जांच पड़ताल करते हैं और संत साहित्य के प्रतिरोधी व प्रासंगिक प्रगतिशील रूप

को पहचानते है और ''उन्होंने कबीर का मूल्यांकन करक संपूर्ण संत साहित्य को नए दृष्टिकाण से देखने का मार्ग प्रशस्त किया।''[22]

निर्गुण धारा के निर्दिष्ट प्रवर्त्तक के रूप में कबीरदास का मूल्यांकन उनका विवेचन होता रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कबीरदास को निर्गुण धारा का महत्वपूर्ण स्तम्भ मानते है। सच्चाई यह है कि आचार्य शुक्ल जी निर्गुण काव्य के कवियों का विवेचन भी कबीरदास से ही शुरू करते हैं। प्रो0 नामवर सिंह लिखते है–''हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम कबीर के साथ उसी तरह जुड़ा है जैसे तुलसीदास के साथ रामचंद्र शुक्ल का।''[23]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने काव्य प्रतिमान गोस्वामी तुलसीदास को केन्द्र रखकर बनाते हैं। पश्चिम के आलोचक जॉन ड्राइडन अपने समकालीन प्रसिद्ध कवि जॉन मिल्टन और विलियम वर्डसवर्थ से अपने काव्य प्रतिमान बनाते हैं और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीरदास से अपने काव्य प्रतिमान बनाते हैं। आलोचक नामवर सिंह मुक्तिबोध, और रघुवीर सहाय से अपने काव्य–प्रतिमान बनाते है। कहने का अभिप्राय यह है कि महत्वपूर्ण आलोचकों के अपने आलोचकीय प्रतिमान हुआ करते है तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इतिहास–दृष्टि के विकसित होने में संत कबीरदास का उन पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

नामवर सिंह ने 'दूसरी परम्परा की खोज' में 'अस्वीकार का साहस' वाले अध्याय में बारीकी से कबीर शब्दावली, उनके तेवर, उनकी सामाजिक समस्पष्टता व प्रगतिशीलता के प्रवाह को खोजा है।''[24]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास को अपनी 'त्रिवेणी' में शामिल नहीं करते है उनके अनुसार ''कबीर अपने श्रोताओं पर यह अच्छी तरह भासित करना चाहते थे कि हमने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, इसी से वे प्रभाव डालने के लिए बड़ी लंबी–चौड़ी गर्वोक्तियाँ कभी कभी कहते थे ... भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है।''[25]

इस प्रकार 'चमत्कार' और 'लम्बी चौड़ी गर्वोक्तियों' के रूप में हिंदी भाषा–भाषी समुदाय के हृदय में गहरे पैठ कबीर का मूल्यांकन आचर्य शुक्ल करते है। दरअसल आचार्य रामचंद्र शुक्ल का ''निर्गुणधारा ने ज्ञानश्रयी कवियों पर उन्हें एक बार जो अशिक्षा और असाहित्यिकता का संदेह हुआ, सो अंत तक बना रहा।''[26] और इस वजह से कबीरदास समेत निर्गुणियों संतों के काव्य से एक प्रकार वे उदासीन रहे। इतिहास की परंपरा का मूल्यांकन होते समय दरअसल नजरे इतिहास की क्रमबद्धता में पड़े

दरारों का पुनः मूल्यांकन की सदा मांग करती हैं और इस मांग की पूर्ति आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीने अपनी इतिहास–दृष्टि से पूर्ण करते हैं। वे लिखते है–''वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे...कबीरदास ऐसे ही मिलन–बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व; जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा; जहां एक ओर योगमार्क निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहां से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना; उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर–विरूद्ध दिशा में गए मार्गों के दोष–गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।''[27]

विद्वानों ने कबीरदास की भाषा लगातार टीका–टिप्पणी करते रहे हैं किसी के 'पंचमेल खिचड़ी' तो किसी ने 'सुधक्कड़ी' तो किसी के 'उटपटांग' कहकर कबीर की भाषा–विषय के समक्ष का हास–परिहास किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के आइने में भाषा का महत्वपूर्ण मूल्यांकन किया वे लिखते हैं–''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया बन गया है तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरहवा फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है। वैसे बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।''[28]

इस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से पूर्व संत साहित्य विशेषतः कबीरदास का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकता था उसे आचार्य द्विवेदी जी ने पूर्ण किया चूंकि ''द्विवेदी जी ने कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व, प्रगतिशील विचारधारा, जनोन्मुख सामाजिक चेतना, मानवतावादी प्रेमभावना, लोकधर्मी, भक्तिभावना, मर्मस्पर्शी कवित्व शक्ति और व्यंग्यपूर्ण शक्तिशाली काव्यभाषा का विवेचन करके हिंदी पाठकों के सामने कबीर का नया रूप उपस्थित किया।''[29]

उत्तर मध्यकाल यानी की रीतिकाल का जन्म भक्तिकाल के उत्तरवर्ती रूप से ही होने आरम्भ हो चुका था। नंददास, रसखान आदि की रचनाएं धीरे–धीरे नायक–नायिका, श्रृंगार के संयोग पक्ष की ओर

मुड़ती चली आ रही थी। और रीति, कवित्त रीति की ओर कवियों का झुकाव एकबारगी होने लगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है–''भक्ति कवियों की गोपी–गोपाल लीला ने क्षीण रूप में जीवित रहने वाली लौकिक रस की काव्यधारा को सहारा दिया और इस ज़रा से सहारे को पा करके लौकिक रस की कविताएं सिर उठाने लगीं। शुरू–शुरू में इनकी धारा बहुत क्षीण थी; किंतु जैसे–जैसे भक्तिकाल के आरंभिक उन्मेष का उत्साह शिथिल पड़ता गया और भक्तों में भी गतानुगातिकता की माया बढ़ती गई, वैसे–वैसे लौकिक रस की कविता भी तेजी से सिर उठाती गई। सत्रहवी शताब्दी के बाद लगभग प्रत्येक कवि की कविता में श्रीकृष्ण और गोपियों का नाम तो अवश्य आ जाता है पर प्रधानता ऐहिकता–परक श्रृंगार रस की ही रह जाती है। वहाँ से भक्तों की संख्या तो नहीं घटती और का उत्साह संपूर्ण रूप से वर्तमान भी रहता है, किंतु भक्ति साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति नहीं रह जाती। यहां आकर कविता को प्रेरणा देने वाली शक्ति अलंकार, रस और नायिका–भेद हो जाते है। यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर है, जिसे उस काल में 'रीति', 'कवित्त रीति' या 'सुकवि रीति' कहने लगे थे।''[30]

किसी काल की प्रवृत्ति के निर्धारण में या उसके परिवर्तित करने में उस काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का भी बहुत बड़ा योगदान रहता है। रीतिकाल का समय मुगल साम्राज्य के पतनशील स्थिति का समय है। राजे–महाराजे श्रृंगार की नदी में डुबकी लगाने हेतु आतुर है। आचार्य द्विवेदी लिखते हैं–''मुगल शासन के अंतिम दिनों में जिस उत्तरदायित्वहीन विलासिता का वातावरण उत्पन्न हुआ था, वह नाना टुकड़ों में विभक्त होकर छोटे–छोटे आकारों में सारे देश में फैल गया। लेकिन उसकी प्रकृति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। विलासिता जब चित्तगत संकीर्णता के साथ प्रकट होती है, तो केवल विनाश की ओर ही ले जाती है। मुगलदरबार के आदर्श पर प्रतिष्ठित शतधा–विकीर्ण विलासिता छोटे–छोटे सरदारों के दरबारों में इसी चित्तगत संकीर्णता के साथ संबंध हो गई। इसीलिए इस काल की श्रृंगार भावना में एक प्रकार का रूग्ण मनोभाव है।''[31]

इस 'रुग्ण मनोभाव' की स्थिति ने इस काल को ब्रिटिश काल में बल दिया। इस काल का साहित्य एक प्रकार से ''उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बंधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये।''[32]

इस प्रकार की बात से निश्चित रूप से साहित्य के भौतिकवादी रूप का प्रत्यक्ष–परोक्ष संकेत मिलने लगता है जो पूर्व मध्यकाल के परलोक सुधार अभियान के विरूद्ध एक अनायास प्रयास देख सकते

है। जिसका विकास भारतीय आधुनिक सामज व साहित्य में विशेषतः हिंदी साहित्य में देखा जा सकता है। यह द्वंद्व ''आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, न तो राधिका कन्हाई सुमिरन के बहानो है'' के रूप में भी देखा जा सकता है। इस रूप की और आचार्य शुक्ल भी अपनी दृष्टि गड़ाए हुए थे जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने छायावाद के 'रहस्यवाद' का जमकर खण्डन किया ताकि भारत में भी भौतिक चिंतन बिना रूकावट के मजबूती से आए। इसका संपूर्ण आशय मार्क्सवाद से कताई नहीं स्वीकार करना चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी काल के मूल्यांकन में उसके पूर्ववर्ती, पार्श्ववर्ती रूप की चर्चा, उसके प्रभाव, परंपरा, पोषण आदि गहरी दृष्टि रखते है। यह उनकी मौलिक इतिहास–दृष्टि भी है। उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल जो कामशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं रसशास्त्र की उंगली पकड़कर आया वह अनायास नहीं था। आचार्य द्विवेदी इसके पीछे संस्कृत साहित्य के उत्तरवर्ती रूप का खुलकर प्रभाव देखते है। चूंकि मुगल बादशाह को संस्कृत के पूर्ववर्ती रूप का अर्थात् ईश्वरीय भक्ति का रूप जंच नहीं सकता था। इसलिए परजीवी रीतिवादी कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु संस्कृत के उत्तरवर्ती रूप की ओर अग्रसर हुए जिसके परिणाम स्वरूप इस जबदी हुई मनोवृत्ति' के रूप ने इस युग के साहित्य को लोक से विमुख कर 'बंधी हुई नाली की वाग्धारा' में बदल दिया। वस्तुतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''रीतिकाल काव्य का मूल्यांकन करते समय द्विवेदी जी का दृष्टिकोण मुख्य रूप से सामंतवार विरोधी और जनसंस्कृति से सहानुभूति रखने वाला है। इसी दृष्टि से उन्होंने रीतिकालीन साहित्य और समाज के संबंध, साहित्य के वर्गीय आधार और परंपरा से उसके संबंध का विवेचन किया है।''[33]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद के महत्व को पहचान कर उन पर अपनी बेदह प्रासंगिक और महत्वपूर्ण टिप्पणी देते है। वे लिखते हैं–''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्पोषित कृषकों की आवाज थे; पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे; गरीबों और बेकसों के महत्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों तक; खोमचे वाले से लेकर बैकों तक, गाँव से लेकर धारा सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रमाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखट के प्रेमचंद का हाथ

पकड़कर भेड़ों पर गाते हुए किसान को, अंतःपुर में मान किए बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारवनिता, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयनो को, ईर्ष्या–परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को साहस परायण चमारिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते है और निश्चित होकर विश्वास कर सकते है कि जो कुछ आपने देखा वह गलत नहीं है।''[34]

इतनी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक टिप्पणी शायद ही किसी आलोचक ने किस कथाकार पर दी हो। वे आचार्य द्विवेदी की अपनी इतिहास–दृष्टि थी जिसके आधार पर उन्होंने प्रेमचंद का इतना महत्वपूर्ण मूल्यांकन किया।

संदर्भ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 निवेदन से उद्धृत
2. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 131
3. वही, पृ0 132
4. वही, पृ0 129
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, संपादक – मुकुन्द द्विवेदी, भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 555–556
6. वही, पृ0 556
7. वही, पृ0 556
8. वही, पृ0 556–557
9. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 15
10. वही, पृ0 52
11. वही, पृ0 52
12. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 59
13. वही, पृ0 22
14. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, पृ0 150
15. वही, पृ0 146

16. रामचंद्र शुक्ल, रचनावली (भाग–1) संपादक नामवर सिंह, आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 117
17. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 59
18. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 15–16
19. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य सरोवर प्रकाशन, आगरा (उ0प्र0), पृ0 59
20. वही, पृ0 59
21. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 155
22. वही, पृ0 155
23. नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 50
24. वही, पृ0 56–60
25. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य सरोवर प्रकाशन, आगरा (उ0प्र0), पृ0 65–66
26. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 140
27. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 75–76
28. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 170
29. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 155
30. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 158
31. वही, पृ0 161
32. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य सरोवर प्रकाशन, आगरा (उ0प्र0), पृ0 169
33. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 159
34. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 229